International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 8 Issue 3, May-June, 2020, Impact Factor: 5.246

सल्तनत काल में इस्लामिक चिन्तन परम्परा का विकास एवं मूल्यांकन

अन्षु मंगल[1], डॉ. ममता कुमारी[2]

[1]रिसर्च स्कॉलर, इतिहास विभाग, राधा गोविन्द विश्वविद्यालय, रामगढ़, झारखण्ड
[2]रिसर्च सुपरवाइजर व सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, राधा गोविन्द विश्वविद्यालय, रामगढ़, झारखण्ड

रिचर्ड एम. इटन की पुस्तक 'इण्डियाज इस्लामिक ट्रेडीशन्स' (2003) बतातीी है कि भारत में इस्लामी परम्परा का वर्णन करते हुए लिखा है कि भारत में पूर्व–औपनिवेशिक काल में इस्लामिक परम्परा का विकास विभिन्न विचारों, प्रथाओं, कलाओं और कार्यक्रमों के माध्यम से हुआ है। इसके अन्तर्गत सूफियों के विचार और संवाद, धार्मिक व्याख्याकारों (उलेमा) के कार्य, स्थानीय भाषायी गाथाएँ, मस्जिदों पर अंकित शब्द, दृश्यात्मक कलाएँ, कव्वाली संगीत, पवित्र कुरान की हिदायतें, ऐतिहासिक कालक्रम, लोक गीत, कानूनी राय, धार्मिक मंत्र, यात्रा संस्मरण, नाटकीय कार्यक्रम, पैगम्बर साहब की जीवनी, तथा महान शेखों की जीवनियाँ शामिल हैं। इटन इसमें आगे लिखते हैं कि इन परम्पराओं को प्रमुख विशिष्टताएँ विभिन्न समुदायों, भाषायी समूहों और सामाजिक वर्गों के अन्दर देखी जा सकती हैं।

वस्तुतः आठवीं शताब्दी के आरम्भ में भारत में इस्लाम की परम्पराओं के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पहलुओं के विकास की शुरू हुई। इस्लाम का एक धर्म के रूप में उदय अरब में सातवीं शताब्दी की शुरूआत में हुआ। वस्तुतः अरब श्रेत्र इस्लाम के आगमन से पूर्व एक मूर्तिपूजक देश था, वहीं 570 ईसवीं में पैगम्बर हजरत मुहम्मद ने जन्म लिया। उन्होंने इस्लाम धर्म से लोगों को अवगत कराया कि सच्चा धर्म वह है जो एक ईश्वर पर विश्वास करता है। ईश्वर सर्वा और सर्वशक्तिमान है। उसकी कोई प्रतिमा नहीं हो सकती। इस्लाम अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ 'शांति में प्रवेश करना होता है। अतः मुस्लिम व्यक्ति वह है, जो परमात्मा और मुनष्य के साथ पूर्ण शांति का सम्बंध रखता हो। अतएव इस्लाम धर्म का लाक्षणिक अर्थ होगा, वह धर्म जिसके द्वारा मनुष्य ईश्वर को शरण लेता है तथा मुनष्यों के प्रति अहिंसा एवं प्रेम का बर्ताव करता है। इस्लाम धर्म के मूल पवित्र कुरान, सुन्नत और हदीस हैं। पवित्र कुरान वह ग्रन्थ है जिसमें पैगम्बर मुहम्मद के पास ईश्वर के द्वारा भेजे गए सन्देश संकलित है। सुन्नत वह है जिसमें पैगम्बर साहब के कृत्यों का उल्लेख है और हदीस वह किताब है जिसमें उनके उपदेश संकलित हैं। इस्लाम धर्म के मानने वालों के लिये पाँच बुनियादी मान्यताएँ हैं। ये मान्यताएं निम्नलिखित हैं–

(i) कलमा पढ़ना अर्थात् इस मंत्र का पारायण करना कि ईश्वर एक है और पैगम्बर मुहम्मद उसके रसूल (दूत) हैं। इस्लाम का एकेश्वरवाद (तौहीद) इसी मंत्र पर आधारित है।
(ii) नमाज पढ़ना अर्थात् प्रतिदिन पाँच बार ईश्वर से प्रार्थना करना।
(iii) रोजा रखना यानि रमजान के महोने में उपवास रखना।
(iv) जुकात यानि अपनी आय का ढाई प्रतिशत दान में दे देना और
(v) हज यानि तीर्थ यात्रा।

इस्लाम के प्रमुख उद्देश्य

इस्लाम के मुख्य उद्देश्यों में हैं– मूर्ति पूजा को समाप्त करना, धर्म युद्ध अथवा जिहाद लड़ना तथा दारूलहब (युद्ध ग्रह) को दारूल इस्लाम (शांति ग्रह) के रूप में परिवर्तित करना। इस्लाम आरंभिक दिनों में एक

क्रांतिकारी धर्म था। वह मनुष्यों को अंधविश्वास से बचाता था, दार्शनिक उलझनों से दूर रखता था और ईश्वर को छोड़कर अन्य किसी भी शक्ति के सामने मस्तक झुकाने से इंकार कर देने की शिक्षा देता था। इस्लाम में अमीर–गरीब को बराबरी का दर्जा दिया गया। इससे जहाँ–जहाँ भी इस्लाम पहुँचा, वहाँ के समाज में भारी क्रांति मच गई और मुनष्य अपने मस्तक को ऊँचा उठाकर चलने लगा। परिणामस्वरूप, केवल सौ सालों के अन्दर ही इस्लाम का साम्राज्य उत्तरी अफ्रीका, स्पेन, दक्षिणी फ्रांस, ईरान, मध्य एशिया यहाँ यहाँ तक कि मंगोलिया तक फैल गया। 8वीं सदी की शुरूआत में भारत में इस्लाम का आगमन हुआ। 712 ईसवीं में अरबों के सेनापति मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध प्रदेश पर राज्य करने वाले दाहिर को हराकर सिंध और पंजाब के कुछ भागों पर अधिकार करके मुस्लिम राज्य की स्थापना।

11वीं सदी में गजनी के सुल्तान ने कई बार आक्रमण किये किंतु उत्तर–पश्चिम क्षेत्रों के अतिरिक्त वह और कहीं भी अधिकार नहीं जमा पाया। 12वीं सदी में गौर के राजा ने दो आक्रमण किये, और भारत में मुस्लिम राज्य की जड़ें जमा दी। तदुपरान्त, 1206 ईसवों में दिल्ली में स्वतंत्र सल्तनत कायम हुई यह सल्तनत मुगलों से होती हुई यह 18वीं सदी में अंग्रेजों के आगमन तक यह इस्लामी राज्य कायम रहा।

मुस्लिम शासकों का प्रारम्भिक लक्ष्य इस्लाम को प्रसारित एवं प्रचारित करना ही था। इसी कारण से हिन्दुओं एवं मुसलमानों में अनवरत् संघर्ष भी हुए। फिर भी कुछ शासक एवं राजनीतिक विचारक ऐसे भी रहे, जो कि हिन्दु–मुस्लिम संस्कृति के बीच सदभावनापूर्ण मेल–मिलाप का प्रयास करते रहे। इस कारण से तत्कालीन समय में एक नई संस्कृति का आगमन भारत में हुआ और भारत इस्लामिक चिंतन से रूबरू हुआ। दिल्ली सल्तनत 1206 ईसवाँ से लेकर 1526 ईसवीं तक यानी बाबर के आगमन तक तथा आगे मुगलों तक विशेष रूप से अकबर के सयम तक यह व्यवस्था कायम रही।

दिल्ली सल्तनत और इस्लामी परम्परा का विकास

दिल्ली के तुर्क– अफगान सुल्तानों का साम्राज्य 1206 ईसवीं से 1526 ईसवीं (लगभग तीन शताब्दियों से अधिक समय तक) भारत में रहा। इन वर्षों में भारत में इस्लामिक संस्कृति एवं कला का भी विकास हुआ और भारत का राजनीतिक चरित्र भी बदला। दिल्ली सल्तनत के युग में इस्लाम को राजधर्म का स्थान प्राप्त था, जिसके सिद्धांतों को रक्षा एवं प्रचार–प्रसार करना सुल्तान और उसकी सरकार का प्रथम कर्त्तव्य माना जाता था। धार्मिक शास्त्रीय आधार पर कानूनों का निर्माण होता था और शासकों को पवित्र कुरान के नियमों के अनुसार आचरण करना होता था। कुरान की हिदायतों को ध्यान में रखते हुए सुल्तान अपनी हिन्दु प्रजा को इस्लाम धर्म के अनुरूप आचरण करवाने का प्रयास करते थे। परंतु सभी सुल्तान ऐसे नहीं थे। जियाउद्दीन बरनी, जिन्होंने 'तारीख–ए–फिरोजशाही' और 'फतवा–ए–जहाँगोरी में मध्यकालीन इतिहास से हमें परिचित कराया है, लिखते हैं कि अलाउद्दीन खिलजी और मोहम्मद बिन तुगलक दो आदर्श शासक हैं जिन्होंने इस्लाम का प्रचार करने के लिए राजकोष के धन का इस्तेमाल नहीं किया बरनी ने सुल्तान को न केवल पवित्र कुरान के अनुसार बल्कि 'जवावित' (राज्य निर्मित कानून) के के आधार पर शासन करने का परामर्श दिया।

अलाउद्दीन वस्तुतः एक निरंकुश शासक था। वह रूप से निरंकुशता में विश्वास रखता था। उसका राजत्व मुख्य रूप से तीन बातों पर आधारित था– 1. शासक की निरकुंशता, 2. धर्म और ताजनीति का पृथक्कीकरण एवं 3. साम्राज्यवाद। अमीरखुसरो जिसने अलाउद्दीन के राजत्व के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, ने अलाउद्दीन खिलजी को न्यायसंगत एवं ऊचाँ दिखाने का निरन्तर प्रयास किया। अलाउद्दीन ने बलबन द्वारा प्रस्तुत निरंकुशता के सिद्धान्त को और बल प्रदान बनाया। बलबन ने शासक को ईश्वर का प्रतिनिधि घोषित किया था। परन्तु अलाउद्दीन के अनुसार सत्ता का स्रोत शक्ति में निहित था। शासक न तो ईश्वर की अनुकरण से सिंहासन प्राप्त करता है, न जनता की इच्छा से, और न ही उलेमा अथवा सामंती के सहयोग से। यह अपने बहुलता से सत्ता पर अधिकार करता है और जब तक वह शक्तिशाली रहता है तब तक उसकी सत्ता भी बनी रहती है। अपने व्यवहार से अलाउद्दीन ने शासक की निरंकुशता को चरमोत्कर्ष तक पहुँचाया। अलाउद्दीन खिलजी दिल्ली सल्तनत का पहला शासक था जिसने धर्म को राजनीति से पृथक किया उसने उलेमाओं के इक्षाओं का पालन नहीं किया तथा उनके विरुद्ध प्रशासन की नीति अपनाई।

अलाउद्दीन ने यामनी–उल–खिलाफत (खलीफा का नाइब) की उपाधि ग्रहण की थी जिसका आशय होता है नाममात्र के लिए खलीफा की परम्परा को स्थापित करना। उसने खलीफा से अपने सुल्तान पद की स्वीकृति लेने को आवश्यकता नहीं समझी न ही कभी उसके लिए प्रयत्न किया। इस सम्बन्ध में ए. एल. श्रीवास्तव ने लिखा है कि इस प्रकार अलाउद्दीन दिल्ली का पहला सुल्तान या जिसने धर्म पर राज्य का नियंत्रण स्थापित किया और ऐसे तत्व को जन्म दिया जिसमें कम से कम सिद्धान्त रूप में राज्य असंप्रदायिक आधार पर खड़ा हो सकता था। इस प्रकार अलाउद्दीन खिलजी ने धर्म के प्रभाव से राजनीति को मुक्त रखने में सफल रहा। उसने शरीयत के सम्बन्ध में काजी मुगीस से कहा था कि, ''भौलाना मुगीस, न मुझे कुछ ज्ञान है और न मैंने कोई पुस्तक पढ़ी है। तब भी मुसमान पैदा हुआ हूँ और मेरे पूर्वज पीढ़ियों से मुसलमान रहे हैं। उन विद्रोहों को रोकने के लिए जिनमें हजारों जीवन नष्ट हो जाते है। मैं अपनी प्रजा को ऐसे आदेश देता हूँ जो उनकी और राज्य की भलाई के लिए लाभप्रद समझता हूँ मैं ऐसे आदेश देता हूँ जिन्हें राज्य के लिए लाभदायक और परिस्थितियों के लिए अनुकूल समझता हूँ। मैं नहीं जानता की शरा उनकी आज्ञा प्रदान करता है कि नहीं। मैं नहीं जानता कि अन्तिम निर्णय के दिन खुदा मेरे साथ क्या व्यवहार करेगा।

राजत्व के सिद्धान्त और सुल्तान की प्रतिष्ठा की स्थापना बलबन दिल्ली का प्रथम सुल्तान था, जिसने राजत्व संबंधी सिद्धान्तों की स्थापना की तथा राजत्व अपने इन विचारों का विस्तार पूर्वक विवेचना किया। उसके राजत्व सिद्धान्त का स्वरूप और सार फारसी राजत्व (ईरान के सासानी शासकों) से लिया गया है। बलबन सुल्तान को पृथ्वी पर अल्लाह का प्रतिनिधि नियाबते खुदाई मानता था। उसके अनुसार सुल्तान का स्थान पैगम्बर के बाद आता है। सुल्तान जिल्ले अल्लाह अर्थात् ईश्वर का प्रतिबिम्ब है। वह अल्लाह के निर्देशानुसार ही शासन करता है। बलबन के अनुसार, सुल्तान पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि (नियाबत–ए–खुदाई) है। उसका स्थान केवल पैगम्बर के पश्चात् है। सुल्तान को कार्य करने की प्रेरणा और शक्ति ईश्वर से प्राप्त होती है। इस कारण जनसाधारण या सरदारों को उसके कार्यों की आलोचना करने का अधिकार नहीं है।'' बलबन यह मानता था कि राजा का हृदय ईश्वर कृपा का विशेष भंडार है और इस सम्बन्ध में मानव जाति में कोई उसके समान नहीं है।

राजत्व के सम्बन्ध में बलबन ने यह भी कहा था कि ''एक अनुग्रही राजा सदा ईश्वर के संरक्षण के छत्र से रक्षित होना चाहिए। बलबन के राजत्व सिद्धान्त के विषय में के निजामी ने कहा है कि, ''बलबन एक उत्तम अभिनेता था और अपने दर्शकों को आधुनिक फिल्मी सितारों की भांति मंत्रमुग्ध रखता था। राजस्व सिद्धान्त की दूसरी विशेषता निरंकुशता थी। बलबन निरंकुश शासन में विश्वास रखता था। उसका यह मानना था कि केवल निरंकुश शासक ही अपनी प्रजा का आज्ञापालन प्राप्त कर सकता है। उसने अपने पुत्र बुगरा खां से कहा था, ''सुल्तान का पद निरंकुशता का सजीव प्रतीक है। परन्तु बलबन का यह भी कहना या कि ईश्वर एक व्यक्ति को सुल्तान का पद इसलिए प्रदान करता है कि ताकि वह प्रजा के कल्याण के लिए कार्य करे और अपने कर्तव्यों के प्रति सदा सजग रहे।'' बलबन के राजत्व की पूरी जानकारी इतिहासकार बरनी द्वारा संकलित उसके वसया में मिलता है। वसाया के प्रथम भाग में सुल्तान के कर्तव्यों का वर्णन है तथा दूसरे भाग में बलबन ने अपने पुत्रों को राजत्व के सम्बन्ध में निर्देश दिया है।

प्रसिद्ध शासकों व राजनीतिज्ञों के वसाया (वसीयतों) को संकलित करना मध्यकालीन फारस की एक लोकप्रिय परम्परा थी। दिल्ली के सुल्तान बलवन के वसाया को बरनी ने संकलित किया बलबन ने दिखावटी मान–मर्यादा और प्रतिष्ठा को राजत्व के लिए आवश्यक बना दिया। इसने राजा के पद को जीवित रखने के लिए कुछ मूलभूत तत्वों को आवश्यक समझा जैसे राजयीय प्रतिष्ठा, सम्मान, वैभव, मान मर्यादा और आचार–व्यवहार। उसने राजा के पद को एक ऐसी संस्था का रूप दिया जिसका जनसाधारण के साथ निकट संपर्क नहीं था। वह साधारण व्यक्ति से बात करना पसंद नहीं करता था केवल वजीर ही उससे बात कर सकता था। अपने विचारों को बलबन ने व्यवहार में परणित किया वंशावली महत्व पर अत्यधिक बल दिया। उसने स्वयं को फिरदौसी के शाहनामा में वर्णित अफरा–शियाब के वंश से संबंधित बताया। सुल्तान की प्रतिष्ठा के अनुकूल अपने व्यवहार अत्यन्त गम्भीर एवं एकाकी बनाया। शराब पीना, विनोदप्रिय व्यक्तियों के साथ बैठना

तथा छोटे अमीरों से मिलना बंद कर दिया। इसके अतिरिक्त उसने सामाजिक सभाओं में होने वाले नृत्य, संगीत, मद्यपान पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया। दरबार में वह न तो स्वयं हंसता में था और न किसी को इसकी छूट देता था दरबार में केवल वजीर ही उससे वार्तालाप कर सकता था। ईरानी परम्परा के अनुरूप बलबन ने दरबार के लिए नियम बनाया और उसे कठोरता से लागू किया। उसने फारसी पद्धति पर अपने दरबार का गठन किया। बलबन दिल्ली का प्रथम सुल्तान था जिसने दरबार में गैर–इसलामी प्रथाओं का प्रचलन किया उसने दरबार में सिजदा (घुटने पर बैठकर सिर झुकाना) व पायबोस (सुल्तान का चरण चुंबन) की प्रथा आरम्भ की। दरबार में उसने प्रत्येक वर्ष ईरानी त्यौहार नौरोज मनाने की प्रथा आरम्भ की।

मोहम्मद बिन तुगलक ने स्वयं खली की उपाधि अमीर–उल–मोमनीन धारण की अपने आरम्भिक काल में उसने सुल्तान के पद के लिए किसी खलीफा की स्वीकृति नहीं ली और न ही अपने सिक्के पर उसक नाम अंकित करवाया। बलबन की भांति सुल्तान को ईश्वर की प्रतिछाया मान्य था। उसने अपने सिक्कों पर सुल्तान के लिए जिल्लिलाह (सुल्तान ईश्वर की परछाई) शब्द खुदवाया। अलाउद्दीन की भांति मुहम्मद बिन तुगलक ने भी उलेमा वर्ग का शासन में हस्तक्षेप स्वीकार नहीं किया। न्याय विभाग पर उलेमा वर्ग के आधिपत्य को समाप्त कर दिया। उसने अन्य व्यक्तियों को भी काजी का पद प्रदान किया। उसके दृष्टि में राज्य का कानून सर्वोपरि था अपराध करने वाले को एक समान दण्ड दी जाती थी। मोहम्मद बिन तुगलक दिल्ली सल्तनत का पहला शासक था जिसने ताँबे व अन्य धातुओं के सिक्कों के माध्यम से जनता को राजत्व का महत्व बताने का प्रयास किया। उसने अपने सिक्कों पर सुल्तान ईश्वर की प्रतिछाया है, ईश्वर सुल्तान का समर्थक है आदि शब्द खुदवाया। उसने खलीफा के लिए मुकदमों को भेजना रोक दिया। मुहम्मद बिन तुगलक की इस नीति के कारण उलेमा वर्ग उसका विरोधी हो गया तथा जनता में भी असंतोष बढ़ने लगा। किन्तु अपने बाद के समय में उसने उलेमा वर्ग से समझीता कर लिया। मोहम्मद तुगलक के शासन काल में राज्य में कई विद्रोह हुए तथा उसे प्राकृतिक प्रकोप का भी सामना करना पड़ा। इसके लिए उसने खलीफा के प्रति असम्मान को उत्तरदायी माना। फलस्वरूप खलीफा के प्रति उसने अपना दृष्टिकोण बदल दिया। सिक्कों पर अपना नाम हटा कर खलीफा का नाम अंकित करवाया। अपने सुल्तान पद की स्वीकृति के लिए मिस्र के खलीफा से प्रार्थना की। 1343 ई० में उसने अपने पद की स्वीकृति (मानपत्र) अज्ञहकीम द्वितीय से प्राप्त की 1344 ई० में मोहम्मद तुगलक ने खलीफा द्वारा भेजे गए दूत हाजी सईद सरसरी का भव्य सम्मान के साथ स्वागत किया।

सुल्तानों का शासन सैद्धान्तिक रूप से इस्लाम धर्म के सिद्धांतों से संचालित होते हुए भी व्यवहार में उससे भिन्न था। अलाउद्दीन खिलजी और मोहम्मद बिन तुगलक, धर्म के उपदेशों से न बंधकर स्वतंत्र रूप से व्यवहार करते थे। सुल्तानों का अधिकार निरंकुश था, फिर भी वे दरबारी और मंत्रियों से सलाह करके ही निर्णय लेते थे। सुल्तानों ने कुछ हिन्दुओं को भी ऊँचे पदों पर नियुक्त किया था। उदाहरण के लिए, अलाउद्दीन खिलजी ने यादव वंश के रामदेव को 'रामराजन' की उपाधि देकर उन्हें नवसारि प्रांत का राजा नियुक्त किया था। गयासुद्दीन तुगलक ने राजा कामेश्वर को मिथिला राज्य के राजा का पद दिया था। मालवा के राजा मेहमूद ने अपने संरक्षक के रूप में मंदिनी राय नामक एक राजपूत को चुना था। सुल्तानों का साम्राज्य शासन की सुविधा के लिये राष्ट्रों में विभाजित था। सुल्तान के निकटवर्ती और उसके आश्रय में रहने वाले लोग उन पर शासन करते थे। गाँवों में पंचायत का शासन होता था। केन्द्रीय और राष्ट्रीय सरकारों में जहाँ मुसलमान अधिकारी शासन करते थे, वहाँ गाँवों में पंचायत के द्वारा सर्वसम्मति से निर्णय लिये जाते थे।

दिल्ली सल्तनत की स्थापना से भारतीय राज्य तथा उसकी राजनीतिक प्रकृति में नए तत्वों का समावेश हुआ ये तत्व राज्य के इस्लामी सिद्धांत अथवा इस्लामिक राजनीतिक सिद्धांत का परिणाम थे शरीअत में बताए गए कानून हो इस्लामिक राजनीति का आधार हैं। मुस्लिम धर्मशास्त्र के अन्तर्गत शिया व सुन्नी में भेद होने के कारण जियाउद्दीन बरनी का मानना था कि खुदा ने इस विश्व का निर्माण किया, जिसमें कि उसने जोड़े के रूप में विरोधाभासी चीजों का निर्माण किया हैः जैसे कि सत्य के साथ मिथ्या, शांति के साथ अव्यवस्था, भलाई के साथ बुराई, दिन के साथ रात, तथा अंधेरे के साथ रोशनी आदि। इस कारण बरनी चाहते थे कि सभी मुसलमान पवित्र कुरान में दी गई हिदायतों का पालन स्वेच्छा से करें । बरनी ने दिल्ली सल्तनत को स्थापित विचारधारा से हटकर इस्लामी प्रभु व प्रभुसत्ता का दैवीय स्वरूप की बजाय सुल्तान की प्रभुसत्ता को स्थापित

करने का सुझाव दिया। बरनी ने धर्म का इस्तेमाल राज्य के राजनीतिक तथा मुस्लिम शासक वर्ग के हितों के लिए किया। बरनी ने राजाओं, कुलीनों तथा अन्य प्रशासकों को व्यक्तिगत तथा राजनीतिक मामलों में शरीअत के साथ–साथ राजनीतिक क्षेत्र में 'जवाबित' (राज्य–निर्मित कानून) के निर्माण का सुझाव दिया। राज्य निर्मित कानून का सहारा लेना इसलिये आवश्यक है ताकि दैवीय कानून और जवाबित के बल पर सुल्तान को और ज्यादा शक्तिशाली बनाने के लक्ष्य को सिद्धि की जा सके। बरनी ने शरीअत और जवाबित का अन्तर बताते हुए लिखा है कि शरीअत उन शिक्षाओं और प्रथाओं का समुच्चय है जो पैगम्बर मुहम्मद साहब और परम् पावन खलीफाओं की देन है, परन्तु परिस्थितियाँ बदल जाने पर जो नई आवश्यकताएँ समाज में उपस्थित हो जाती हैं, उन्हें पूरा करने के लिये सुल्तान अपने यहाँ के कुलीन वर्ग से परामर्श करके जो कानून बनाता है, उन्हें 'जवाबित' की संज्ञा दी जाती है। बरनी ने 'फतवा–ए–जहाँदरी' में आदर्श सुल्तान के लिये कुछ परामर्श भी दिये हैं, ताकि एक आदर्श इस्लामिक राज्य कायम हो सके।

जहाँ तक कला और साहित्य की परम्परा का सवाल है, दिल्ली सल्तनत के युग में इसका भी पोषण हुआ। इस युग में प्रसिद्ध विद्वान और कवियों ने भी अपनी छाप छोड़ी प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो, इतिहासकार शम्स–उस–सिराज, जियाउद्दीन बरनी तथा लेखों के रचयिता ऐनुल मुल्क सुल्तानों के पोषण से ही फारसी में उत्तम ग्रन्थों की रचना कर सके उत्तर और दक्षिण भारत में शासन करने वाले सुल्तानों ने अपने–अपने प्रांतों की भाषाओं और साहित्य को प्रोत्साहन दिया। बीजापुर और गोलकुण्डा के सुल्तानों ने उर्दू साहित्य को बढ़ावा दिया। कश्मीर पर राज्य करने वाले सुल्तान जैनुल आबिदीन ने अपनी हिन्दु जनता के प्रति समन्वयवादी राजनीति का प्रयोग करते हुए 'जजिया कर समाप्त कर दिया, महाभारत तथा कल्हण की राजतरंगणी का फारसी में अनुवाद कराया तथा हिन्दुओं को ऊंचे प्रशासनिक पद भी प्रदान किये। इसी तरह फिरोजशाह तुगलक ने संस्कृत ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद करवाया। सिकंदर लोदी ने वैद्य शास्त्र को संस्कृत से फारसी में अनुवादित करने के लिये प्रोत्साहन दिया।

सल्तनत युग में हिन्दु–मुस्लिम एकता के परिचायक के रूप में सूफी एवं भक्ति आन्दोलन भी महत्वपूर्ण हैं। सूफी मत के अनुसार, अस्तित्व केवल परमात्मा का है, वह प्रत्येक वस्तु में है और प्रत्येक वस्तु परमात्मा में है, सभी धर्म व्यर्थ है, परंतु उनका उपयोग है कि वे एक ही सत्य की ओर इंगित करते हैं। इसमें सबसे उपयोगी धर्म इस्लाम है, जिसका सच्चा दर्शन सूफी मत का दर्शन है। सूफो साधक ईश्वर को निराकार भी मानते हैं और साकार भी। सूफी मत में परमेश्वर साकार सौन्दर्य है और साधक साकार प्रेम। से प्रेम और प्रेम से मुक्ति' हो सूफी मत के सिद्धान्तों का निचोड़ है। भारत में सूफियों के चार सम्प्रदाय है पहला–सुहरावर्दिया, दूसरा–चिश्तिया, तीसरा–कादिरिया, और चौथा– नक्शबन्दिया सम्प्रदाय। भारत के प्रमुख सूफी संतों में चिश्ती समुदाय के निजामुद्दीन औलिया एवं अमीर खुसरो प्रमुख। इन दोनों संतों का पोषण भी सल्तनत काल में हुआ था। इसी काल में सामाजिक क्रांतिकारी कबीरदास भी हुए। इन संतों और सूफीवाद के प्रभाव से दिल्ली के सुल्तानों ने समन्वयवादी राजनीतिक परम्परा को अपनाने के साथ–साथ हिन्दु–मुस्लिम एकता का भी प्रयास किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. मध्यकालीन भारत की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक व्यवस्था, रहीस सिंह
2. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, डॉ. के.एल. खुराना,
3. दिनकर, रामधारी सिंह, 2012, संस्कृति के चार अध्याय, इलाहाबादः लोकभारती प्रकाशन,
4. मध्यकालीन भारत को वृहत् इतिहास खण्ड–1 (1000–1526 ई.)– जे.एल. मेहता,
5. वर्मा, हरीशचन्द्र, 2009, मध्यकालीन भारत, भाग–2, दिल्लीः हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
6. सत्यनारायण, मोटुरि एवं शरीफ, इब्राहीम (सम्पादित), 2008, विश्व ज्ञान सहिता, भाग–1, दिल्लीः हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
7. हबीब, इरफान (सम्पादित), 1999, मध्यकालीन भारत, खण्ड–चार, दिल्लीः राजकमल प्रकाशन।